रेखाओं के कुशल शिल्पी : डॉ.जगदीश गुप्त

–जयनाथ मणि त्रिपाठी

'अंचल भारती' का कथा अंक प्रेस में था इसी बीच कार्यालय के काम से इलाहाबाद जाने का अवसर मिला, कई दिन रूकना था | इसी प्रवास क्रम में एक दिन डॉ.जगदीश गुप्त से मिलने का कार्यक्रम भी बन गया, और मैं उनके नागवासुकि (दारागंज) स्थित निवास पर जा धमका, संयोग अच्छा था डॉ.गुप्त घर पर ही थे– खाली और एकदम 'फ्रेश', औपचारिक परिचय के बाद घंटों इधर-उधर की बातें होती रहीं, मैंने 'अंचल भारती' के लिये ढेर सारे उनके 'रेखांकन' छाँटे और कुछ तुरंत ही तैयार भी करवाया, चाय-पान के बाद वे पार्श्व भाग में अवस्थित अपने 'कलाकक्ष' में ले गये जहाँ विभिन्न कलाकृतियाँ, पोर्ट्रेट,कैनेवास, स्टैंड,तूलिकायें रंग और स्केचपेन आदि इधर-उधर किंतु करीने से धरे थे, चित्रात्मकता, लय एवं सोच की सुलझी पकड़ के जादूगर डॉ.जगदीश गुप्त का 'कलाकार' हर पल, हर बिंदु पर सजग था मुखर था, फर्श और दीवाल पर अटे-बंटे उकेरे चित्रों ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया था ,समय कम था और ढेरों प्रश्न उमड़- घुमड़ रहे थे, मैंने सीधे-सीधे कुछ प्रश्न कर डाले और उन्होंने जो उत्तर दिया उसे मैं नीचे वैसे ही उद्धृत कर रहा हूँ |

प्रश्न :- डॉ. साहब ! आप नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में ख्यात हैं और आपका कविता संग्रह 'नाव के पाँव' अपने में बेजोड़ है, आप हिंदी विभाग से सम्बद्ध भी हैं, क्या आप बताने का कष्ट करेंगे कि आप की चित्रकला में रुचि कब और कैसे हुई ?

उत्तर :- आपने ठीक ही कहा कि मैं मूलतः हिंदी का व्यक्ति हूँ लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि हिंदी का व्यक्ति या कवि चित्रकला का व्यक्ति या विद्यार्थी नहीं हो सकता,बल्कि वास्तविकता तो यह है कि कवि के साथ कलाकार, मेरा तात्पर्य चित्रकार से है, युग सत्य को अधिक सक्षम रीति से उद्घाटित कर सकता है जो अधिक सशक्त, सहज और प्रेरक होगा, मैंने एक ओर जहाँ कविताएँ लिखीं हैं जो लोगों की रुची और उनके द्वारा सराही गई है, वहीं मेरे चित्रों को भी लोगों से प्यार-दुलार और समर्थन मिला है, आपने देखा होगा महादेवी जी के गीत उनके चित्रों के साथ कितने सजीव प्रेरक एवं सशक्त हो जाते हैं ?

जहाँ तक मेरे रुचि या सुझाव का प्रश्न है काल सम्बंधी कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती, बल्कि यूं समझ लीजिये कि यह सब बीज रूप में विद्यमान होती हैं जो अवसर पाकर अंकुरित और प्रस्फुटित हो जाती हैं |

प्रश्न :- आपके कविताओं में एक आग्रह सा एक कसक सी महसूस होती है, किन्हीं हद तक आपके चित्र इसके अपवाद हैं, आप इस सम्बंध में क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर :- यह तो अपनी-अपनी सोच समझ है, जहाँ तक कविता और चित्रों में आग्रह और कसक के अभिव्यक्ति का प्रश्न है मैं इसे मात्र माध्यम का भेद मानता हूँ, चित्रों की मूकभाषा के लिये आप अपने शब्द देने के लिये स्वतंत्र हैं किंतु कविता में आपको वह स्वतंत्रता कहाँ ?

प्रश्न :-डॉ. साहब, आप कई साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं, कई साहित्यिक पत्रिकाओं का सफल सम्पादन भी किया है, इसी तरह कला सम्बंधी अपने कार्यों पर भी थोड़ा प्रकाश डालने का कष्ट करें जिनसे आप सम्बद्ध हों ?

उत्तर :- 'नाव के पाँव' के अतिरिक्त 'शब्द दंश' 'हिमविद्ध' आदि संकलनों के अतिरिक्त नईकविता के एक से लेकर आठ अंक तक का सम्पादन मैंने किया है , परिमल के संयोजक के रूप में भी मैं कार्य कर चुका हूँ वहीं भारतीय चित्रकला जो नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली से प्रकशित-ग्रंथ का प्रणयन कर मुझे काफी संतोष है, राज्य ललित कला अकादमी से भी मैं सम्बद्ध हूँ तथा अकादमी द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक मंडल में हूँ |

प्रश्न :- अच्छा आप यह बतला दें कि रेखांकनों के लिये किस प्रकार की भाव-भूमि आपको अधिक प्रेरित करती है और क्यों ?

उत्तर :- देखिये कला को लोकजीवन से अलग कर देखने से उसकी जीवंतता समाप्त हो जायेगी, लोक जीवन और रोजमर्रे के दृश्यों का रेखांकन अधिक प्रकाशोत्पादक एवं लोगों को आत्मीय लगते हैं,मेले का दृश्य, किताब बेचने वाला, ट्रेन में सोयी हुई महिला, बस में यात्रा के समय के दृश्य आदि की गति साधकर किये गये रेखांकन जहाँ लोगों को आत्मीय से प्रतीत होते हैं, वहीं इनसे मुझे अपार सुख मिलता है, इस

प्रकार के प्रेरक दृश्यों को देखकर मेरी अंगुलियाँ अपने आप थिरकने लगती हैं, इन्हें रोका नहीं जा सकता, मैं इन्हें रोकता भी नहीं हूँ–

प्रश्न :- अंत में यह जानना चाहूँगा कि आप मूलतः कहाँ के निवासी है और प्रयाग वासी कब से हुये ? क्या आप नये कलाकारों के लिये कोई प्रेरक संदेश देना चाहेंगे |

उत्तर :- भाई ! वैसे तो मैं शाहाबाद(हरदोई का मूल निवासी हूँ किंतु शिक्षा-दीक्षा के क्रम में देहरादून, सीतापुर, मुरादाबाद, कानपुर और इलाहाबाद में रहते हुए सन् 1950 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से सम्बद्ध हूँ प्राचीन मूर्तियों, मुद्राओं को देखने संग्रह करने के अतिरिक्त मुझे भ्रमण से (मुख्यतः गिरी गह्वरों के) सुख मिलता है | मेरा विचार है कि अपने देश के शिलाचित्रों के विपुल वैभव से सही गम्भीर रूप से परिचित होने पर भारतीय कला को मौलिक दिशा में प्रवृत्त होने की सम्यकप्रेरणा मिलेगी |

इस बीच कु. कल्पना शर्मा से परिचय कराते हुए डॉ.गुप्त ने उनके सद्यः प्रकाशित मनोरमा के निबंध को मेरी ओर सरका दिया, कु. शर्मा ने डॉ. गुप्त को देर से प्रतीक्षारत कुछ मेहमानों की ओर इंगित किया और हम सभी के हाथ बर बस जुड़ गये |

(अंचल भारती-साहित्यिक त्रैमासिकी- कला अंक-8 :वर्ष-1981,लेखक; जयनाथ मणि त्रिपाठी— 2/451 देवरिया रामनाथ, देवरिया)